ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-8* November-2020
Anthology : The Research

'उच्च शिक्षा का निजीकरण : विविध आयाम'

'Privatization of Higher Education: Multiple Dimensions'

Paper Submission: 05/11/2020, Date of Acceptance: 25/11/2020, Date of Publication: 26/11/2020

विजय सिंह मावई
सह आचार्य
इतिहास विभाग,
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर, भारत

सारांश

शिक्षा किसी भी देश के विकास की सबसे अहम कड़ी है। शिक्षा के पद सोपानिक स्वरूप में उच्च शिक्षा उच्चतम स्थान पर स्थित है। उच्च शिक्षा समाज की बौद्धिकता की प्रतीक है। उच्च शिक्षा का समुन्नत विस्तार ही राष्ट्र के स्तरोन्नयन का मुख्य साधन है। आजादी के उपरान्त हमनें उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बहुत विकास किया है। परन्तु वर्तमान परिदृश्य में उच्च शिक्षा के स्तर को और ऊँचाइयों पर ले जाने की आवश्यकता है। शिक्षा विकास की अनिवार्य शर्त है और सरकार के पास इसके लिए पर्याप्त आर्थिक संसाधन नही है। बढ़ती जनसंख्या एवं वैष्वीकरण के युग में उच्च शिक्षा में संख्यात्मक के साथ–साथ गुणात्मक अभिवृद्धि की महती आवयकता है। ऐसी स्थिति में निजीकरण ही एक उपाय है जिसे कतिपय दिशा–निर्देशों के द्वारा लागू करना चाहिए। यह प्रक्रिया समाजोपयागी के साथ–साथ शिक्षा को मूल्यप्रभावी भी बनाएगी।

Education is the most important link in the development of any country. The post of education is the highest place in the hierarchical form of higher education. Higher education is a symbol of the intelligence of society. Improved expansion of higher education is the main means of upgrading the nation. After independence, we have developed a lot in the field of higher education. But in the present scenario there is a need to take the level of higher education to higher levels. Education is an essential condition of development and the government does not have sufficient financial resources for this. In the era of increasing population and globalization, there is a great need for numerical as well as qualitative growth in higher education. In such a situation, privatization is the only solution which should be implemented through certain guidelines. This process will make education cost-effective along with social utility.

मुख्य शब्द : उच्च शिक्षा, निजीकरण की आवश्यकता, भारत में उच्च शिक्षा का इतिहास, भारतीय शिक्षा प्रणाली व शिक्षा आयोग ।

Higher Education, Need For Privatization, History of Higher Education In India, Indian Education System And Education Commission.

प्रस्तावना

शिक्षा को अमूल रत्न कहा गया है, उसका जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। वह मानव को सच्चे अर्थो में मानव बनाती है, उसका बौद्धिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास करती है। सद्–असद्, अच्छे–बुरे, हितकर–अहितकर को पहचानने की शक्ति प्रदान करती है। जीवन को सही दिशा और गति देती है, मानव मात्र का उत्थान करती है। वह जीवन सागर का ऐसा आलोक स्तम्भ है जो उसमें तैरते हुये प्राणियों को मार्ग दर्शन करती है, उन्हें भूलने भटकने से रोकती है। भर्तृहरि ने कहा है विद्या बिना मनुष्य पूंछ तथा सींघ रहित पशु है, 'पशु विषाणहीनः है।'[1]

निजीकरण की अवधारणा निजी स्वामित्व की बहुस्तरीय मात्रात्मकता प्रदर्शित करती है–यह संपूर्ण स्वामित्व के रूप में भी हो सकती है और साझा स्वामित्व के रूप में भी अथवा इसका स्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं में निजी क्षेत्रों को प्रबन्धन एवं नियंत्रण का दायित्व सौंपकर सरकारी एकाधिकार को कम करने के रूप में भी हो सकती है। अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में धीरे–धीरे निजीकरण के प्रभाव को महसूस किया जा रहा है। इसलिए अनिवार्यतः शिक्षा के क्षेत्र में भी निजीकरण की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है।

शोध का उद्देश्य

1. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण की आवश्यकता का अध्ययन करना।
2. उच्च शिक्षा में आने वाली आवश्यकताओं का अध्ययन करना।
3. उच्च शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधानों व सुझावों का अध्ययन करना।
4. उच्च शिक्षा में अन्य विचारणीय मुद्दों का अध्ययन करना।
5. उच्च शिक्षा में व्याप्त विसंगतियों की और ध्यान आकृष्ट करना।
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का अध्ययन करना।

भारत में उच्च शिक्षा का इतिहास

प्राचीन काल में भारत ज्ञान के क्षेत्र में विश्व गुरू कहलाता था। प्राचीन भारत की शिक्षा का प्रारम्भिक रूप हम ऋग्वेद में देखते है। इस समय शिक्षा में आचार्य का स्थान बढ़ा गौरवपूर्ण था। आचार्य पारंगत विद्वान व सदाचारी होने के साथ विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास पर अपना कार्य करते थे।[2] प्राचीन काल से ही राजस्थान में भी शिक्षा का बड़ा महत्व रहा है। उस युग की शिक्षा विशेष विचारधारा तथा उद्देश्य पर आधारित थी। शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक होने के साथ–साथ नैतिक तथा आध्यात्मिक भी था। अर्थोपार्जन और बौद्धिक विकास के साथ–साथ परम शांति प्राप्त करना उस युग की शिक्षा का लक्ष्य था।[3]

मध्यकाल में घरेलु शिक्षा का प्रचलन व्यावसायिक क्षेत्र में बड़े पैमाने पर होता था। एक कुशल दस्तकार व शिल्पकार अपने पुत्र को घर पर ही अपने कौशल की शिक्षा देते थे। उस समय के बने हुए परकोटा युक्त शहर, दीवारें, महल, कुऐं, चित्र व जेवर आदि उस दक्षता के प्रमाण देते है। जिसकों बनाने वाले कुशल कारीगर थे। जिन्होनें घर में रहकर पितृ परम्परा विधि से शिक्षा प्राप्त की थी।[4] गुरूकुल की व्यवस्था सम्पन्न व्यक्तियों या दानी शासकों के भूमि अनुदान से तथा शासकों व अन्य व्यक्तियों द्वारा दी जाने वाली भेंट आदि से होती थी। राजस्थान के विभिन्न भागों में अध्ययन के प्रसिद्ध संस्थान मिले है। एकलिंग शिलालेख (1488 ई.) व कुम्भलगढ़ शिलालेख (1460 ई.) से भी आश्रम व्यवस्था का पता चलता है।[5]

स्वतंत्रता के पूर्व 1813 के चार्टर एक्ट के अनुसार कम्पनी ने पहली बार शिक्षा के प्रति सरकारी उत्तरदायित्व उठाया।[6] राजा राम मोहन राय प्रगतिशील शिक्षा के अग्रदूत थे।[7] स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के विकास एवं विस्तार का भार राज्य पर बढ़ा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 के अनुसार, सरकार अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार जनता के शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों को पुष्ट करेगी। सामाजिक विकास एवं आर्थिक क्षमता में लगातार वृद्धि के मद्देनजर सरकार के लिए 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराना अपरिहार्य हो जाता है[8] साथ ही नागरिकों की उच्च शिक्षा के लिए भी उसे व्यवस्था करनी पड़ती है, जिससे वे एक सम्मानजनक जीवनयापन कर सकें। इन सबके साथ, एक और बात महत्वपूर्ण है कि सरकार को सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराने के लिए विशेष रूप से सचेष्ट रहना पड़ता है।

सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता–विद्यालय खोल रहे है, प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर विद्यालयों का संचालन उसके द्वारा होता है और महाविद्यालयों एवं विष्वविद्यालय के द्वारा उच्च शिक्षा का प्रबंध भी वही करती है। परन्तु धीरे–धीरे इन संस्थाओं के वित्तीयन में अनेक प्रकार की कठिनाइयां पैदा हो रही हैं।

शिक्षा–आयोग (1964–66) ने 1986 तक सकल राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष शिक्षा पर व्यय करने की सिफारिश की थी, यदि राष्ट्रीय आय में विकास की दर 6 प्रतिशत तक पहुंच जाती है और जनसंख्याा–वृद्धि दर 1955–56 के मुकाबले 1985–86 में नियंत्रित होकर 2. 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक जाती है। परन्तु सकल राष्ट्रीय आय में वास्तविक विकास–दर 1965–66 से 1985–86 तक मात्र 3.97 प्रतिशत प्रतिवर्ष की सीमा ही छू सकी। संसाधनों की ऐसी किल्लत में विभिन्न प्रक्षेत्रों में राशि–आवंटन ने अच्छी खासी प्रतियोगिता जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी और उसमें शिक्षा प्राथमिकता सूची में अत्यन्त नीचे आ गई। सरकार अब बहुत लम्बे समय तक इस बोझ को ढो पाने में अपने को असमर्थ महसूस करने लगी है। इसलिए, अब शिक्षा का निजीकरण ही इसका एक मात्र निदान बताया व समझा जा रहा है।

ज्ञान का विस्तार बहुत तेजी से हो रहा है और इसका संग्रह विकास की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। परिणामस्वरूप, शिक्षा अब स्वयं एक उत्पाद बन गई है, जो कि मानव–संसाधन विकास के लिए अनिवार्य है। निजी क्षेत्र, जिसमें ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है, भी शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा सकता है। विशेषकर तकनीकी क्रांति के बाद इसकी सम्भावनाएं और भी बढ़ गयी है। संचार, इलेक्ट्रॉनिक, कम्प्यूटर आदि क्षेत्रों में हुए तकनीकी विकास के लिए एक सुशिक्षित एवं प्रभावी रूप से प्रशिक्षित मानव–संसाधन की आवश्यकता है, जिसकी आपूर्ति मात्र सार्वजनिक क्षेत्र की शिक्षण–संस्थाओ से संभव नही।

निजीकरण की आवश्यकता

निजीकरण की आवश्यकता इसलिए भी महसूस की जा रही है कि वर्षो से राज्य –प्रायोजित शिक्षा ने इस क्षेत्र को लगभग 'जनसेवा' में तब्दील कर दिया है और विशेषकर इसके प्रत्यक्ष लाभान्वितों (छात्रों) ने इसके महत्व को बहुत तरजीह नही दी है। अस्तु, यदि शिक्षा देने के बदले उसकी सम्पूर्ण कीमत या आंशिक कीमत शिक्षा –शुल्क आदि के रूप में वसूल की जाती है, तो एक तो छात्र इसके महत्व को समझेंगे, दूसरे इसे गंभीरता से लेंगे, जिसे उनकी और शिक्षा की –दोनों की गुणवत्ता बढ़ेगी। निजीकरण का लक्ष्य ऐसे विद्यालयों, महाविद्यालयों, पॉलिटेकनिक एंव व्यावसायिक संस्थाओं की स्थापना है, जो शिक्षा की कुल लागत वसूल करेंगें। इससे सरकार के अनुदानो मे कमी आएगी और सरकार का घाटे का बोझ कम होगा। ऐसी संस्थाओं को पर्याप्त छूट होगी कि वे योग्य शिक्षकों को बेहतर वेतनमान पर भर्ती कर सकें। निजीकरण की इस प्रक्रिया में उन कॉरपोरेट क्षेत्रों से भी

अधिक सहयोग की अपेक्षा की जा सकती है, जो इस प्रकार की संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त लोगों की सेवाएं प्राप्त करते है।

विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर की षिक्षा में सरकार की सुविस्तृत गतिविधियों के बावजूद निजीकरण मुख्यतः विद्यालय स्तर पर ही हो रहा है। निजी विद्यालय, जो निजी क्षेत्रों द्वारा पूर्णतः व्यावसायिक आधार पर चलाए जाते है, बड़े विडंबनापूर्ण ढंग से 'पब्लिक स्कूल' कहे जाते है और इनमें संपूर्ण शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से दी जाती है। निजी क्षेत्र की इन गतिविधियों में धार्मिक संस्थाऐं एवं न्यास भी संलग्न है, जिन्हें किसी प्रकार का सरकारी अनुदान नही मिलता, जैसे–ड़ी.ए.वी. प्रबंधन, सनातन धर्म फाउण्डेशन आदि। परंतु, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कई संस्थाएं निजी क्षेत्रों द्वारा स्थापित है, किन्तु उन्हे पर्याप्त सरकारी एवं गैर–सरकारी अनुदान मिलते है। 1989–90 में दिल्ली विश्वविद्यालय की शिक्षण–संस्थाओं पर किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार सार्वजनिक संस्थाओं में, जो सरकार एवं विश्वविद्यालय द्वारा प्रबंधित है, कुल छात्रों के तीन चौथाई निबंधित है। फिर भी, उधर निजी प्रबंधन के अंतर्गत भी कई संस्थाएं विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है, जिन्हे सरकार से 95 प्रतिशत अनुदान मिलता है।

शिक्षा का सारा व्यय–भार अब सरकार वहन नही कर सकती। सरकार पर सारी निर्भरता का अर्थ होगा शिक्षा पर सब्सिडी के रूप में सरकार का भारी व्यय, जो राजकोषीय स्थिति को बुरी तरह कुप्रभावित करेगा। कुल सरकारी सब्सिडी का 74 प्रतिशत प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों को दिया जाता है और 19 प्रतिशत उच्च शिक्षा को। और, चिंताजनक रूप से मुश्किल प्रति छात्र कुल व्यय का 5 प्रतिशत शिक्षा–शुल्क के माध्यम से वसूल हो पाता है। फिर पिछले, कई वर्षो से सरकारी संस्थानों में शिक्षा शुल्क में बिल्कुल ही वृद्धि नही हुई है, जबकि व्ययभार कई गुना बढ़ गया है।, इसलिए स्थिति और भी शोचनीय है। और, यह तो जाहिर ही है कि यदि सरकार पर व्यय–भार बढ़ेगा, तो इसका असर शिक्षा की गुणवत्ता पर अवश्य पड़ेगा।

इस पूरे संदर्भ में एक और तथ्य है कि सिर्फ निजी क्षेत्र शिक्षा की सारी आवयकताऐं पूरी नहीं कर सकता। सबसे पहली बात तो यह कि ये निजी क्षेत्र शिक्षा देने के बदले जिस शुल्क की अपेक्षा रखते है, उसे दे पाने में हमारे देश का बहुसंख्य निर्धन वर्ग असमर्थ है। उदाहरण के तौर पर निजी क्षेत्र की तकनीकी संस्थाओं द्वारा ली जाने वाली 'कैपिटेशन–फी' को देखा जा सकता है। पूर्णतः निजीकरण की व्यवस्था शिक्षा को घिनौने व्यवसाय में परिवर्तित कर देगी। अपने संचालन के लिए स्वतंत्र निजी प्रबंधन बाजार एवं समय के व्यावसायिक रूख के अनुरूप पाठ्यक्रम शुरू या बंद करेंगे और तदनुरूप शिक्षकों की बहाली एवं उन्मुक्ति भी कर देगें। इसके कई तरह के दुष्परिणाम होगें, जिनमें शिक्षकों का शोषण सर्वाधिक आशंकित है। वैसे, इसका एक सकारात्मक पहलू भी है कि सरकारी क्षेत्रों में नौकरी की सुरक्षा ने शिक्षकों को लापरवाह बना दिया है और सर्वाधिक प्रोन्नति ने अध्ययन एवं शोध की प्रक्रिया को बुरी तरह कुप्रभावित कर दिया है। सामाजिक एवं भौतिक विज्ञान, प्राचीन भारतीय भाषाओं का अध्ययन (जैसे, संस्कृत) आदि, जिनकी वर्तमान संदर्भ में बाजारू मांग बहुत ज्यादा नही है, निजीकरण के द्वारा हो रहे शिक्षा के व्यावसायीकरण में पूर्णतः उपेक्षित हो सकते है, परंतु रचनात्मक कला एवं संस्कृति के संदर्भ में इनका संरक्षण भी तो अपरिहार्य सरकारी हस्तक्षेप की नीति सर्वाधिक सटीक नीति होगी। शिक्षा के प्रतिदान की मात्रा धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए। एक अनुमान किया गया है कि अगले 10 वर्षो के छात्रों से वसूले जाने वाले शुल्क से शिक्षा के क्षेत्र में कुल व्यय का 25 प्रतिशत हासिल कर लिया जाने लगेगा। इस स्तर को प्राप्त करने के लिए 1990 में राममूर्ति समिति ने उच्च शिक्षा में शुल्क वृद्धि का प्रस्ताव किया था, जिसके अनुसार अत्यन्त धनी शिक्षार्थियों से कुल शिक्षा लागत का 75 प्रतिशत उसके बाद के समृद्ध शिक्षार्थियों से 50 प्रतिशत और उसके बाद के स्तर के शिक्षार्थियों से 25 प्रतिशत वसूल किया जाये और आर्थिक रूप से पिछड़े तबके के शिक्षार्थियों से कोई शुल्क नहीं वसूल किया जाये। यह विभेदकारी शुल्क प्रणाली कहीं से भी व्यावहारिक नहीं है। एक समान शुल्क प्रणाली ही व्यावहारिक हो सकती है। जिसमें 25 प्रतिशत छात्रों को, जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े तबकों से आते है, पूर्ण शुल्क–उन्मुक्ति दी जा सकती है। इससे लागत वसूली की दर भी बढ़ेगी और सरकार का व्यय–भार भी कम होगा।

विश्व बैंक ने आकर्षक सुझाव दिया है कि कॉरपोरेट क्षेत्र, जो उच्च शिक्षा क्षेत्र के उत्पाद के सबसे बड़े उपभोक्ता है, पर स्नातक कर आरोपित किया जाये। राममूर्ति समिति ने ऐसे किसी प्रयास से इस आशंका के साथ असहमति जताई कि इसका असर कॉरपोरेट क्षेत्र की आर्थिक स्थिति पर पड़ेगा और रोजगार के अवसरों को भी कुप्रभावित करेगा। कई देशों के विश्वविद्यालयों में कॉरपोरेट क्षेत्र शिक्षा के लिए प्रर्याप्त अनुदान देते है। इसलिए, यदि उपर्युक्त प्रकार का कोई प्रयास भारत में भी किया जाये तो इससे कुछ दुष्परिणामों को देखना बहुत तार्किक नहीं लगता। विश्वविद्यालयों में कॉरपोरेट क्षेत्र के लिए अनुसंधान कार्य किये जा सकते है, और उसके लिए जो धन उस क्षेत्र से मिलेगा, उसका उपयोग शैक्षिक आवश्यकताओं के लिए किया जा सकता है। राष्ट्रीय अनुवाद आयोग की स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय सह–कायता, अन्य संस्थानो से सह–सम्बन्ध, खुली व्यवस्था आदि के द्वारा भी इस व्यवस्था को प्रभावशाली व सुलभ बनाया जा सकता है।[9]

निष्कर्श

निजीकरण की इस प्रक्रिया में सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि निजी संस्थाओं में निर्धन तबकों के हितों का भी पूरा ध्यान रखा जा रहा है। इससे यह भी सुनिश्चित किया जा सकेंगा कि निजीकरण का परिणाम शिक्षा का पूर्णतः व्यावसायिकरण नहीं होता। शिक्षा विकास की अनिवार्य शर्त है और सरकार के पास इसके लिए पर्याप्त आर्थिक संसाधन नहीं है। ऐसी स्थिति में निजीकरण ही एक उपाय है, जिसे कतिपय दिशा–निर्देशों के द्वारा लागू करना चाहिए। यह प्रक्रिया समाजोपयोगी के साथ–साथ शिक्षा को मूल्यप्रभावी

भी बनाएगी। आज सामान्य शिक्षा का युग समाप्त हो गया है। सर्वत्र विशेषज्ञों, प्रौद्योगिकी, निपुण व्यक्तियों व वैज्ञानिकों की मांग है। सरकार के बजट में शिक्षा के लिए आंवटित धनराशि सामान्य शिक्षा–संस्थानों के लिए ही पर्याप्त नहीं होती। अतः उसके लिए चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, ज्ञान विज्ञान की विभिन्न शाखाओं मे शिक्षा देने वाले नये–नये संस्थानों को खोलने, उनके भवन निर्माण, उनकी प्रयोगशालाओं के लिए कीमती उपकरण जुटाने के लिए धन जुटाना कठिन ही नहीं असम्भव है। इस स्थिति में यह आवश्यक है कि निजी संस्थाओं को, समर्थ, साधन सम्पन्न औद्योगिक घरानों को टाटा, रिलाईन्स, बिड़ला, मोदी आदि कम्पनियों के स्वामियों को प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि के शिक्षा संस्थान खोलने की अनुमति दी जाये ताकि देश के प्रतिभा सम्पन्न युवक जो अवसरों के अभाव में मारे–मारे फिरते है। उन्हें अपनी प्रतिभा और योग्यता के उपयोग का अवसर मिले और वे अपना जीवन सुखी तथा देश को समृद्ध बना सके। संख्यात्मक रूप में भारतीय उच्च शिक्षा विश्व में उच्च स्थान रखती है। लेकिन गुणात्मक रूप में भारत का कोई भी उच्च शिक्षण संस्थान विश्व के प्रथम 200 उच्च शिक्षा संस्थानों में स्थान नहीं रखता है। यह भारतीय उच्च शिक्षा की निम्न गुणात्मकता को दर्शाता है। बढ़ती जनसंख्या एवं वैश्वीकरण के युग में उच्च षिक्षा में संख्यात्मक के साथ–साथ गुणात्मक अभिवृद्धि की महती आवश्यकता है।[10]

सन्दर्भ

1. *भर्तृहरि : नीति शतक, श्लोक नं. 12*
2. *महाजन विद्याधर – प्राचीन भारत का इतिहास, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।*
3. *शर्मा जी.एन. – राजस्थान थ्रू द एजेज, पार्ट 2 (1300–1761 ए.डी.) राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 1990, पृष्ठ 346*
4. *व्यास डॉ. प्रकाश – राजस्थान का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 107–110*
5. *शर्मा गोपीनाथ – राजस्थान के इतिहास के स्त्रौत, पुरात्व भाग 1, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1973, पृष्ठ 148–149*
6. *रामलखन शुक्ल– आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 148*
7. *रामलखन शुक्ल– आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 148*
8. *पी.के.चड्डा –भारतीय राज प्रणाली, पृष्ठ 95*
9. *डॉ. एस. भटनागर–शोध आलेख challanges of education in a multilingual world' Lyncean journal of cultural and historical studies, vol.02,no.02, july 2009 में प्रकाशित*
10. *Ugc and Higher Education in India Annual Report : 2013-14, 2014-15*